Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भामह और उनका काव्यालंकार

डॉ. पी.एस. बघेल*

* एसोसिएट प्रोफेसर, पीएम एक्सीलेंस शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना –आद्याचार्य भामह ने अपने विषय में केवल इतना कहा है कि–

सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं 'रक्रिलगोमीसूनुदेन्'

अर्थात् सुजनों के ज्ञान के लिए, रक्रिलगोस्वामी के पुत्र भामह ने यह ग्रंथ काव्यालंकार की रचना की है। उक्त पंक्तियों के रूप में दो बातें स्पष्ट होती है कि रक्रिलगोस्वामी के पुत्र भामह ने 'काव्यालंकार' ग्रंथ की रचना की है। इससे भामह के संबंध में केवल इतना ज्ञात होता है कि भमाह एक कश्मीरी पंडित थे।

इसी प्रकार भामह ने रचनाकाल के संबंध में परवर्ती विद्धानों ने इतना कहा है कि भामह कृत काव्यालंकार पर उद्भट ने भामह विवरण' नामक टीका भी लिखी है। उद्भट कश्मीर नरेश जयापीड की सभा में सभापति थे। और दैनिक वेतन के रूप में एक लाख दीनार प्राप्त करते थे।

'काव्यालंकारसार संग्रह' पर टीकाकार के रूप में 'प्रतीहारेन्दुराज' इस का तथ्य व्यक्त किया है।

'राजतरंगिणी' से ज्ञात होता है कि–

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतन:
भट्टोऽभूतुद्भटटस्यतस्य भूमिभर्तु: सभापति:

जयापीड़ का शासनकाल सन् 779–813 ई. तक माना जाता है। अतएव उद्भट् का समय भी ही मानना चाहिए। जिन्होंने प्रमाणित किया कि 'काव्यालंकार' इस काल तक काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। अतएव यह निर्वावाद है कि भामह सन् 779 ई. से काफी पहले हो चुके हैं।

शान्तरक्षित के व्याख्याकार कमलशील ने इन्हें भामह की रचना बताया है किन्तु उनका शान्तरक्षित के टीकाकार ने उनका पर्याप्त खण्डन किया है।

ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने रस की महत्ता के सन्दर्भ में एक कारिका दी है:–

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था: काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा:।।

अर्थात्, वसन्त ऋतु में वृक्षों के समान, काव्य में रस को पाकर, पूर्वदृष्ट समस्त पदार्थ भभी नवीन प्रतीत होने लगते हैं। इस से स्पष्ट है कि आनन्दवर्धन भामह को बाणभट्ट से भी पूर्ववर्ती मानते हैं।

बाणभट्ट महाराज हर्ष के आश्रित कवि थे जिनका शासनकाल सन् 606–647 ई. है। एक कश्मीरी लेखक से उत्तर भारत के एक कवि ने प्रभाव ग्रहण में कुछ समय तो अवश्य लगेगा ही। अत एक भामह सन् 606 ई. से भी पूर्ववर्ती है।

(2) 'काव्यालंकार' के पंचम अध्याय में प्राणनिरूपण के सन्दर्भ में भामह ने बौद्ध नैयाायिक दिड्नाग का अनुसरण किया है। दिड्नाग की प्रत्यक्ष परिभाषा इस प्रकार है–

प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसुंक्तम्।

अर्थात् नाम,जाति आदि से असुंक्त, कल्पनाविहीन ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। भामह ने भी इसी का अनुसरण किया है–

प्रत्यक्षं कल्पनापोढं ततोऽर्थादिति केचन।
कल्पनां नाम जात्यादियोजनां प्रतिजानते।।

अर्थात् किसी वस्तु का कल्पनारहित ज्ञान ही प्रत्यक्ष प्रमाण है–ऐसा कुछ विद्धान् मानते हैं। नाम, जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य–इन उपाधियों का व्यक्ति में आरोप ही कल्पना कहलाता है। वाचस्पति मिश्र का मत है कि भामह ने दिड्नाग का अनुसरण किया है। दिड्नाग का समय 400 ई. के लगभग माना जाता है अत: भामह का समय भी इनके पश्चात् ही होना चाहिए।

भामह का बौद्धत्व – कुछ विद्धानों की मान्यता है कि भामह बौद्ध थे। इसकी पुष्टि में नरसिंहयंगर कहते है कि– भामह ने 'काव्यालंकार' के मंगलाचरण में भगवान् बुद्ध को नमन किया है–

प्रणम्य सार्वं सर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभि:।
काव्यालंकार इत्येष यथाबुद्धि वाधास्ते।

नरसिंह अयंगर का कहना है कि 'सर्वज्ञ नाम बुद्ध का है। प्रमाण स्वरूप अमरकोष में कहा गया है कि सर्वज्ञ: सुगतो बुद्धो धर्मराजस्थतागत:' (काव्यालंकार 1/13) अर्थात् सर्वज्ञ बुद्ध का पर्याय है ऐसा नरसिंह अयंगार कहते है कि उनका बुद्ध होना प्रमाण माना जा सकता है।

अमरकोष ने भामह के बुद्ध होने के प्रमाण का खण्डन करते हुए कहा है कि– 'सर्वज्ञ' शब्द सामान्यत: ईश्वर का वाचक है। एक मात्र बुद्ध का नहीं। अमरकोष में उसे भगवान् शंकर का भी पर्याय माना है। यथा–

कृषानुरेता: सर्वज्ञो धूर्जटिनीललोहित:

समान्त: सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान शब्द ईश्वर के लिए ही प्रयुक्त होते हैं, मात्र बुद्ध के लिए नहीं।

इसी प्रकार रक्रिल नामकरण में भी यह विवाद है कि 'रक्रिल' गोमिन शब्द गौतम बुद्ध के एक शिष्य 'गोमिन्' नाम था इससे उनका बुद्ध होना प्रमाण मानने के समान प्रतीत होता है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि बौद्ध परम्परा में किसी का भी नाम ब्राह्मण द्वारा अपनाया जाता रहा है।

भामह की एक मात्र रचना है 'काव्यालंकार।' वररुचि ने भी इसकी

पुष्टि की है। वरुरुचि ने प्राकृत प्रकाश में कहा है कि–

वररुचिरचित प्राकृत लक्षण सूत्राणि लक्ष्यमार्गेण।
बुद्ध्वा चकार वृत्तिं संक्षिप्तां भामहः स्पष्टाम्।।

आज भामह की एकमात्र उपलब्ध पुस्तक 'काव्यालंकार' ही है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भामह की रचना 'काव्यालंकार' पुस्तक सन् 1880 ई. में काव्यालंकार की पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई।

डॉ. पी.वी. काणे ने भामह के बौद्ध होने का खंडन किया है।

सन् 1909 ई. में बाम्बे संस्कृत सीरीज से प्रकाशित विद्यानाथ कृत 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' में काव्यालंकार को प्रकाशित कराया।

'काव्यालंकार' 6 परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्य शरीर, द्वितीय व तृतीय में अलंकार निरुपण, चतुर्थ में दोषनिरुपण पंचम में न्यायनिर्णय और षष्ठ में शब्द शुद्धि रखा गया है।

प्रथम परिच्छेद काव्य शरीर निर्णय में भामह ने काव्यप्रयोजन पर प्रकाश डाला है–

धर्मार्थकामोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं साधुकाव्य निबन्धम्।।

अर्थात् सत्काव्य का निर्माण पुरुषार्थचर्तुचतुष्टय एवं कलाओं में निपुणता, आनंद और कीर्ति प्रदान करता है।

भामह सूत्र रूप में कहते है कि–

काव्यद्दष्टार्था प्रीतिकीर्ति हेतु त्वात्।।

काव्य रचना हेतु भामह ने जो दृष्टिकोण रखा है, परवर्ती आचार्यों ने उसका अनुकरण ही किया है। काव्य प्रयोजन हेतु कुन्तक ने कहा है कि–

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमार क्रमोदितः।
काव्बन्धोऽभिजातानां हृदयाहलादकारकः

अर्थ– काव्यबन्ध कुलीन व्यक्तियों के हृदय को आह्लादित करने वाला और सुकुमार पद्धति से कहा गया धर्मादि की सिद्धि का उपाय है।

काव्यामत का आनन्द तद्विदों के अन्तकरण में चतुर्थवर्ग के फल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार उत्पन्न करता है। इसे आगे बढ़ाते हुए कुन्तक ने काव्य प्रयोजन के रूप में कहा कि–

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमार क्रमोदितः।
काव्बन्धोऽभिजातानां हृदाह्लाद कारकः।।

अर्थात् काव्यबंध कुलीन, व्यक्तियों के हृदय को आह्लादित करने वाला और सुकुमार पद्धति कहा गया धर्मादि की सिद्धि का उपाय है।

समन्ववादी आचार्यों में मम्मट ने 6 प्रयोजन माने है– यश प्राप्ति, अर्थार्जन, व्यवहार ज्ञान, उनिष्ट–निवारण, अलौकिक आनंदानुभूति और कान्ता समान उपदेश। इस संदर्भ में काव्यालंकार में यश की प्राप्ति धर्मादि की सिद्धि का उपाय बताया है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृत्तये कान्ता सम्मि'मततयोपदेशयुजे।।

काव्य प्रोजन में यश की प्राप्ति के साथ कवित्व को पूर्व पुण्यों का प्रसाद भी मानते हैं।

भर्तृहरि भी कहते हैं कि– नास्ति येषां यशः। काये जरामरणजं भयम्। अर्थात् काव्य रूपी शरीर को बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं रहता। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य कहलाते है।

भामह ने दो पुरातन धारणाओं का समन्व करते हुए कहा है कि–

रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य कहलाता है।

कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित' में कहा है कि–

शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्वस्थितौ काव्य तद्विदाह्लाद कारिणि।

अर्थात् काव्यमर्मज्ञों को आह्लादकारक, वक्र कविव्यापार से युक्त, रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ दोनों को मिलकर ही काव्य कहलाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. काव्यालंकार 6/64
2. ध्वन्यालेक 4/4
3. काव्यालंकार 5/6
4. काव्यालंकार 2/2
5. अक्षारकोष 1/35
6. काव्यालंकार 1/2
7. काव्यालंकार 1/1/5
8. वक्रोक्ति जीवितम् 1/3–5
9. वक्रोक्ति जीवितम् 1/3
10. काव्यालंकार 1/2
11. वक्रोक्तिजीवितम् 1/7

****